# विचार संगम

## भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

# विचार संगम

## भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

**Books n Books**

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :

**पुष्पा शर्मा**

**Books n Books**

51/1509, आचमन, वेदविहार,

लोहाखान, अजमेर-305001

ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

संस्करण

प्रथम 2025

**ISBN : 978-81-993854-0-5**

मूल्य - 400/-

रचना - विचार संगम-भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

5

# रामचरित मानस में समाज और संस्कृति

**राजीव कुमार शर्मा**
**सहायक आचार्य ( शिक्षा विभाग )**
**हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर**

16वीं सदी भारत में मुगल सम्राट अकबर का काल था, जब भक्ति और सूफी परम्पराएँ समानांतर रूप से विकसित हो रही थीं। यह संक्रान्ति काल तुलसीदास के उदय का समय था। तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस के माध्यम से न केवल धार्मिक बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का सूत्रपात किया।

रामचरितमानस भारतीय समाज और संस्कृति का सजीव दर्पण है। तुलसीदास ने समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव, पाखंड, और नैतिक पतन को दूर करने हेतु भक्ति, मर्यादा, और समानता का संदेश दिया। उन्होंने राम के आदर्श चरित्र के माध्यम से मनुष्य को नीति, धर्म, कर्तव्य, और मानवीय मूल्यों का पाठ पढ़ाया। राम के रूप में उन्होंने आदर्श पुत्र, राजा, भाई और पति का चरित्र प्रस्तुत किया, जो समाज के लिए अनुकरणीय है।

सांस्कृतिक दृष्टि से रामचरितमानस में भारतीय जीवन–मूल्यों का सुंदर समन्वय है–भक्ति, प्रेम, दया, सेवा, सत्य और कर्तव्य भावना इसका आधार हैं। इसमें लोकभाषा, लोकरीतियों, पर्व–त्योहारों, और लोकविश्वासों का यथार्थ चित्रण हुआ है। तुलसीदास ने संस्कृत के गूढ़ तत्वों को अवधी जैसी लोकभाषा में प्रस्तुत कर संस्कृति को जन–जन तक पहुँचाया। नारी के रूप में सीता का चरित्र त्याग, सहनशीलता और पतिव्रता धर्म का आदर्श है। इसी प्रकार 'रामराज्य' का चित्रण न्याय, समानता और लोककल्याण पर आधारित आदर्श शासन की अवधारणा प्रस्तुत करता है।

अत: रामचरितमानस केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि भारतीय समाज और संस्कृति का समग्र दस्तावेज है। इसमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का आदर्श और मानवता, मर्यादा, व समरसता की भावना निहित है। तुलसीदास ने भक्ति के माध्यम से समाज को एकता, प्रेम और नैतिकता की दिशा प्रदान की, जो आज भी भारतीय संस्कृति की आत्मा को आलोकित करती है।

गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार तुलसीदास अपने युग के वरदान थे। युग–चेतना, मानवता, दर्शन, कला, भाषा और संस्कृति सभी उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

ऐसे संक्रमणकाल में तुलसीदास का आविर्भाव हुआ, जब समाज को नई दिशा और चेतना की आवश्यकता थी। वे अपने समय की विचारधारा और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के साकार प्रतीक बने।

पं. रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, तुलसीदास का प्रादुर्भाव हिंदी काव्य जगत में एक चमत्कार था। उन्होंने सभी रचना–शैलियों पर अपना उच्च स्थान स्थापित किया और उत्तर भारत की जनता के हृदय में अमिट श्रद्धा प्राप्त की। वे सच्चे अर्थों में जनकवि थे।

उनकी जन्मतिथि पर विद्वानों में मतभेद है, यद्यपि वि.सं. 1680 में उनके देहावसान को सर्वमान्य माना गया है–

**"संवत् सोलह से असी, असी गंग के तीर।**
**सावन श्यामा तीज सनि, तुलसी तजे सरीर।।"**

धार्मिक वातावरण में जन्मे तुलसीदास बचपन से ही रामभक्ति में लीन थे। उनकी माता हुलसी और पिता आत्माराम दुबे थे। गुरु नरहरिदास से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। भक्तमाल में उन्हें ब्राह्मण वंश का बताया गया है। इस प्रकार तुलसीदास केवल कवि नहीं, बल्कि समाज–संस्कृति के युगनिर्माता थे।

तुलसीदास के वैराग्य का संबंध उनकी पत्नी रत्नावली से जुड़ी एक प्रसिद्ध घटना से माना जाता है। 252 वैष्णवन की वार्ता, नाभादास के भक्तमाल, इन्द्रदेव नारायण के लेख (मर्यादा पत्रिका) तथा रघुवरदास के तुलसीदास चरित्र से यह ज्ञात होता है कि पत्नी द्वारा उपहासित किए जाने पर उनमें गहन वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई। रत्नावली दीनबन्धु पाठक की पुत्री थीं।

इस वैराग्य भावना से ओतप्रोत होकर तुलसीदास ने भक्तिभाव, दर्शन और जीवन–मूल्यों से युक्त व्यापक साहित्य की रचना की। बाबा वेणीमाधव दास के मूल गोसाई चरित में उनके प्रमुख ग्रंथों का कालानुक्रमिक उल्लेख मिलता है– रामगीतावली, कृष्णगीतावली (सं. 1628), रामचरितमानस (सं. 1631), दोहावली (सं. 1640), सतसई, विनयपत्रिका (सं. 1642), रामललानहछू, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल (सं. 1643), बाहुक, वैराग्यसंदीपिनी, रामाज्ञाप्रश्न और बरवै रामायण (सं. 1669)।

कवितावली का इन ग्रंथों में पृथक उल्लेख नहीं मिलता, पर बाहुक के साथ उसका संबंध स्पष्ट है। सं. 1628 में मिथिला–यात्रा के समय सीतावट पर तीन कवित्तों की रचना का उल्लेख मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि कवितावली किसी एक समय या स्थान की रचना न होकर विभिन्न अवसरों पर लिखे गए कवित्तों का संकलन है।

इस प्रकार पत्नी के उपहास से जन्मी वैराग्य भावना ने तुलसीदास को सांसारिक मोह से ऊपर उठाकर एक ऐसे लोकमंगलकारी कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया, जिन्होंने भक्ति, मर्यादा और मानवता की अमर धारा प्रवाहित की।

तुलसीदास के ग्रंथों की संख्या को लेकर विभिन्न विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार तुलसीदास ने छोटे-बड़े मिलाकर बारह ग्रंथों की रचना की। इनमें प्रमुख हैं— दोहावली, कवितावली, रामचरितमानस, गीतावली, रामाज्ञाप्रश्नावली, विनयपत्रिका, रामलला नहछू, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवै रामायण, कृष्णगीतावली और वैराग्यसंदीपिनी।

शिवसिंह सरोज ग्रंथ में शिवसिंह सेंगर ने लिखा है कि तुलसीदास के बनाए ग्रंथों की सटीक संख्या ज्ञात नहीं हो सकी। उन्होंने अपने पुस्तकालय में उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर विवरण दिया है, जिसमें 49 कांडों में विभाजित रचनाएँ जैसे – चौथाई रामायण, कवितावली, गीतावली, छन्दावली, बरवै, दोहावली, कुंडलिया, तथा अन्य स्वतंत्र ग्रंथ जैसे सतसई, रामशलाका, संकटमोचन, हनुमान बाहुक, कृष्णगीतावली, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, करखा छन्द, रोला छन्द, भूलना छन्द आदि सम्मिलित हैं। उन्होंने विनयपत्रिका को तुलसी का 'महाविचित्र मुक्ति-रूप प्रज्ञानंद सागर ग्रंथ' कहा है।

डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन ने तुलसीदास के 21 ग्रंथों का उल्लेख किया है, जिनमें प्रमुख हैं – रामचरितमानस, गीतावली, कवितावली, दोहावली, छप्पय रामायण, राम सतसई, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, वैराग्यसंदीपिनी, रामलला नहछू, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्नावली (रामसगुनावली), संकटमोचन, विनयपत्रिका, बाहुक, रामशलाका, कुंडलिया रामायण, करखा रामायण, रोला रामायण, झूलना और कृष्णगीतावली।

हालाँकि अपने इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रीलिजन एण्ड इथिक्स  में ग्रियर्सन ने तुलसीदास के ग्रंथों को दो श्रेणियों—बड़े और छोटे ग्रंथों में बाँटकर कुल बारह ग्रंथों की सूची दी है।

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों के मतों में संख्या का अंतर होते हुए भी सर्वसम्मति से यह स्वीकार किया गया है कि तुलसीदास का साहित्य अत्यंत व्यापक, बहुआयामी और भक्ति, दर्शन तथा संस्कृति के समन्वय से पूर्ण है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने तुलसीदास के 17 ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जैसे— मानस रामायण, श्रीराम नहछू, वैराग्य-सन्दीपिनी, बरवै रामायण, पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल, श्रीराम गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, दोहावली, श्रीरामाज्ञा प्रश्न, कवित्त रामायण, कलिधर्माधर्मनिरूपण, विनय पत्रिका, छप्पय रामायण, हनुमान बाहुक, हनुमान चालीसा और संकट मोचन। परंतु सामान्य रूप से 12 ग्रन्थ ही प्रमाणिक माने गए हैं, जिन्हें मिश्र बन्धु और तुलसी ग्रन्थावली दोनों ने स्वीकार किया है।

तुलसीदास ने अपने काव्य में तत्कालीन समाज की प्रवृत्तियों, लोकतत्व और मानवीय संवेदनाओं का अद्‌भुत चित्र प्रस्तुत किया। रामचरितमानस में उन्होंने श्रीराम के आदर्श, मर्यादा, नीति, दीनहित, सौन्दर्य और भक्ति का सुंदर समन्वय किया। तुलसी का

साहित्य केवल भक्ति तक सीमित नहीं, बल्कि सम्पूर्ण जीवन का सार है—जहाँ नीति, लोकजीवन, करुणा, सौन्दर्य और मर्यादा एक साथ मिलते हैं।

उन्होंने श्रीराम को आदर्श मनुष्य के रूप में प्रस्तुत कर यह दिखाया कि मानव जीवन की पूर्णता सेवा, त्याग, मर्यादा और करुणा में निहित है। तुलसी का काव्य जीवन का दर्पण है—जो मनुष्य को पवित्र, संतुलित, आदर्श और समाजोपयोगी जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

तुलसीदास भारतीय जीवन-दर्शन के कवि हैं, जिन्होंने रामचरितमानस के माध्यम से जीवन की संपूर्णता, मर्यादा और भक्ति का अमर सन्देश दिया।

तुलसीदास ने अपने काव्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति के समग्र भाव को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। उनके ग्रन्थों में आर्य समाज की सांस्कृतिक झलक, लोक जीवन की परम्पराएँ और धार्मिक उत्सवों की भव्यता दृष्टिगोचर होती है।

जानकी-मंगल में उन्होंने जनकपुरी के विवाह उत्सव का मनोहर चित्र खींचते हुए जन-जीवन की आनंदमयी संस्कृति का वर्णन किया है जहाँ स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभी उल्लासपूर्वक भाग लेते हैं।

रामलला नहछू और गीतावली में भी उन्होंने धार्मिक संस्कारों, विशेषत: नामकरण और गृह-सज्जा के प्रसंगों के माध्यम से लोक-संस्कृति की सुंदर झाँकी प्रस्तुत की है—जहाँ गंगा जल, कलश, झालर, तोरण, मंगलगीत और लोकगीतों की सुगंध व्याप्त है।

पार्वती-मंगल में उन्होंने कन्यादान संस्कार का अत्यंत मार्मिक चित्रण करते हुए वैदिक परंपरा, लोकरीति और धार्मिक विधानों का सजीव संगम दिखाया है।

तुलसीदास के काव्य में भारतीय संस्कृति का सौन्दर्य, उसकी रसपूर्णता, लोकजीवन की सहजता और धर्म-संस्कारों की पवित्रता एक साथ मिलकर झिलमिलाती है। उनका साहित्य भारतीय संस्कृति का जीवंत दर्पण है।

तुलसीदास ने अपने काव्य के माध्यम से समाज के विविध पक्षों—नैतिकता, त्याग, लोकक्ल्याण, पारिवारिक संबंध, राष्ट्रधमज़ और उत्तरदायित्वों—का अत्यंत गहन और तात्विक विश्लेषण किया है। उनकी भक्ति भावना केवल ईश्वर-निष्ठा तक सीमित नहीं, बल्कि लोक-संग्रह, समाज-निर्माण और जनक्ल्याण की प्रेरणा से ओतप्रोत है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सही कहा है कि तुलसीदास भारत के सच्चे लोकनायक हैं, क्योंकि उन्होंने समाज में फैली विविधताओं—जाति, मत, परंपरा और आचार-विचार—को जोड़ने का अपार धैर्य दिखाया। रामचरितमानस उनका समन्वय का महाकाव्य है, जिसमें लोक और शास्त्र, भक्ति और ज्ञान, गृहस्थ और वैराग्य, सगुण और निर्गुण—सभी का अद्‌भुत संगम है।

रामचरितमानस में तुलसीदास ने चरित्र-निर्माण को समाज की सबसे बड़ी

आवश्यकता बताया। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, सुग्रीव, बाली, रावण, विभीषण आदि पात्रों के माध्यम से उन्होंने सदाचार, त्याग, नीति, मर्यादा और धर्म के आदर्श स्थापित किए। भरत और राम के संवाद में उन्होंने राज्य, कर्तव्य और त्याग की मर्यादाओं को स्पष्ट करते हुए बताया कि सच्चा धर्म प्रेम, त्याग और कर्तव्यनिष्ठा में निहित है।

तुलसीदास ने अपने काव्य द्वारा समाज को न केवल भक्ति का मार्ग दिखाया, बल्कि आदर्श जीवन, चरित्र-निर्माण और नैतिक उत्थान की अमर शिक्षा भी दी। उनका साहित्य भारतीय समाज का नैतिक और सांस्कृतिक संविधान है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस में समाज के विविध चरित्रों को लोकभावना के साथ प्रस्तुत किया है। कैकेयी जैसे जटिल पात्र को भी उन्होंने जनसामान्य की दृष्टि से दिखाया, जहाँ उसके व्यवहार को व्यंग्य और करुणा दोनों रूपों में चित्रित किया गया –

**''काने खोरे कूबरे कुटिल कुचा को जानि,**
**तिय विशेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानी।''**

यह पंक्ति लोकमानस में व्याप्त उसकी छवि को प्रकट करती है।

दूसरी ओर, तुलसीदास की भक्ति-साधना में विनम्रता, दैन्य और लघुत्व का विशेष स्थान है। शबरी प्रसंग में जब वह स्वयं को 'अधम' कहती है, तब श्रीराम का उत्तर अत्यंत उदार और समन्वयी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है –

**''जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई, धन बल परिजन गुन चतुराई।**
**भगति हीन पर सोहहि कैसा, बिनु जल बारिद पेखिअ जैसा।''**

श्रीराम यहाँ यह प्रतिपादित करते हैं कि सच्ची भक्ति ही ईश्वर-प्राप्ति का साधन है, न कि जाति, कुल या पद।

इस प्रकार तुलसीदास ने सामाजिक समानता और कर्मप्रधानता का सिद्धांत दिया। डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार, ''गोस्वामीजी के मत में जन्म से चाहे भेद हो, परंतु कर्म के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति ऊँचा बन सकता है।''

तुलसीदास ने अपने काव्य में समाज के आदर्श और यथार्थ दोनों रूपों को समरस भाव से प्रस्तुत किया है। उन्होंने मानव जीवन के प्रत्येक संस्कार और सामाजिक व्यवहार का अत्यंत भावपूर्ण चित्रण किया। गीतावली में नामकरण संस्कार का अत्यंत जीवंत और लोकमंगलमय वर्णन मिलता है–

**'नामकरण रघुवरनि के नृप सुदिन सोधाए,**
**घर-घर मुद मंगल महा गुन गाय सुहाए।'**

इस प्रसंग में समाज का उल्लास, लोकगीत, घरों की सजावट, तोरण, कलश, चौक-आलापन और सामूहिक उत्सव की छवियाँ दिखाई देती हैं। यह दृश्य केवल धार्मिक नहीं, बल्कि लोकजीवन की सजीवता और सौन्दर्यबोध का दर्पण है।

इसी प्रकार जानकी–मंगल, रामलला–नेचू, पार्वती–मंगल जैसे ग्रन्थों में विवाह, यज्ञोपवीत, कन्यादान और गृहसज्जा जैसे संस्कारों का सूक्ष्म वर्णन किया गया है। जनकपुर के विवाह–मंडप का चित्रण विशेष रूप से उल्लेखनीय है–

**'विधिहि बन्दि तिन कौन्ह अरम्भा, विरचे कनक कदलि के खम्भा।**
**हरित मणिन्ह के पत्र फल, पदुमराग के फूल।'**

इस दृश्य में स्वर्ण, मणि, पुष्प, कलश, तोरण और संगीत से सुसज्जित विवाह–स्थल का मोहक वातावरण प्रकट होता है। तुलसीदास ने इन वर्णनों के माध्यम से न केवल भारतीय समाज के संस्कारमय जीवन को प्रतिष्ठित किया, बल्कि कला, सौन्दर्य, धर्म और लोक–संस्कृति का अद्भुत संगम भी दिखाया।

तुलसीदास ने अपने काव्य में समाज की विषमताओं को मिटाने का प्रयास किया और समन्वय के आदर्श को प्रतिष्ठित किया। वे ऐसे संत–कवि थे जिन्होंने विविध वर्गों, समुदायों और जीवन–स्थितियों के बीच सद्भाव और समानता का सेतु निर्मित किया। उनके लिए सभी मनुष्य ईश्वर की सृष्टि के अंश थे। इसलिए कोई भी निम्न या तुच्छ नहीं था।

फिर भी तुलसीदास स्वार्थपरकता को स्वीकार नहीं करते। वे स्पष्ट कहते हैं–

**'तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ।'**

अर्थात् जो केवल अपने स्वार्थ का मित्र है, वह सच्चा मित्र नहीं; सच्चा साथी वही है जो राम के समान परमार्थ में सहयोगी हो।

तुलसी–साहित्य में समाज की जीवन–व्यवस्था के तीन आश्रम रूप स्पष्ट दिखते हैं – गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास।

इनमें विशेष रूप से गृहस्थ जीवन को उन्होंने सबसे अधिक मूल्यवान माना। निषादराज गुह, केवट, कोल, किरात और किरातिनियाँ – सभी को उन्होंने ऐसे गृहस्थों के रूप में चित्रित किया है जिनका जीवन प्रेम, सहयोग और भक्ति से ओतप्रोत था।

उनकी भक्ति न केवल भावनात्मक थी, बल्कि सामाजिक भी – जैसे जब किरातिनियाँ श्रीराम की कथा सुनती हैं, तो वे भावविह्वल होकर कहती हैं –

**'बचन परस्पर कहति किरातिनि, पुलक गात जल नयन बहे री,**
**तुलसी प्रभुहि बिलोकति एकटक, लोचन जनु बिनु पलक लहे री।'**

यह चित्रण केवल धार्मिक अनुभूति नहीं, बल्कि लोकजीवन में स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी और संवेदनशीलता का परिचायक भी है।

तुलसीदास ने अपने काव्य में आदर्श शासन और आदर्श शासक की ऐसी मानव–केन्द्रित अवधारणा प्रस्तुत की है जिसमें व्यक्ति का महत्व, नीति का पालन, और सर्वजन–सुख मुख्य ध्येय हैं।

वे मानते हैं कि राजा का धर्म केवल शासन करना नहीं, बल्कि प्रजा की प्रसन्नता और कल्याण सुनिश्चित करना है। रामचरितमानस में श्रीराम को इस आदर्श रूप में चित्रित किया गया है—

**'प्रसन्नतां या न गताभिषेकतः तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।'**

अर्थात् श्रीराम का मुख-चंद्र न राज्याभिषेक में इतना प्रसन्न हुआ था, न वनवास के दुःख में म्लान—यह दर्शाता है कि सच्चे शासक की आभा परिस्थितियों से परे होती है।

तुलसीदास राजा के गुणों की तुलना सूर्य, अग्नि और माली से करते हैं, जो सबको समान रूप से प्रकाश, ताप और पालन देते हैं।

**'माली, भानु, कृसान सम, नीति निपुन नरपाल।**
**प्रजा भाग बस होहिगे, कबहुं कबहुँ कलि काल।।'**

इससे स्पष्ट है कि राजा का शासन नीति, समता और न्याय पर आधारित होना चाहिए।

'रामराज्य' की अवधारणा में तुलसीदास ने एक ऐसे समाज का चित्र खींचा है जहाँ कोई रोगी, निर्धन, अज्ञानी या दुखी नहीं है।

**'दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहिं व्यापा।।**
**नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना। नहिं काउ अबुध न लच्छन हीना।।'**

यह समाज न केवल समृद्ध है बल्कि नैतिक, धार्मिक और सुखी भी है। हर व्यक्ति अपने वर्णाश्रम धर्म में स्थित होकर वेदमार्ग पर चलता है—

**'वरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।'**

शासक के आवश्यक गुणों का सुंदर वर्णन करते हुए तुलसीदास ने श्रीराम के रथ के प्रतीक से आदर्श राजा के व्यक्तित्व को समझाया है—

सौरज (वीरता), धीरज (धैर्य), सत्य, शील, बल, विवेक, क्षमा, समता, ईश्वर-भक्ति, विरक्ति, संतोष, दान और विज्ञान — ये सभी गुण राजा के रथ के अंग हैं।

**'सौरज धीरज जेहि रथ चाका, सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका।'**

गीतावली में उन्होंने रामराज्य को विश्वसुख का प्रतीक बताया—

**'बन ते आइकै राजा राम भये भुआल।**
**मुदित चौदह भुवन सब सुख सुखी सब सब काल।।'**

यहाँ सम्पूर्ण सृष्टि के प्रसन्न रहने की कल्पना की गई है।

संक्षेप में, तुलसीदास का आदर्श शासक वह है जो— प्रजा को परमप्रिय समझे, धर्म, नीति और परमार्थ से शासन करे, और ऐसा समाज रचे जहाँ समता, समृद्धि और शांति का स्थायी वास हो।

उनका रामराज्य एक आध्यात्मिक लोकतंत्र की परिकल्पना है, जहाँ सत्ता का लक्ष्य प्रजा का कल्याण और ईश्वर की मर्यादा दोनों हैं। यही कारण है कि महात्मा गांधी ने भी रामराज्य को अपने आदर्श शासन की प्रेरणा माना।

तुलसीदास का काव्य जीवन की गहराइयों, सामाजिक यथार्थ और भक्तिपूर्ण समन्वय का अद्भुत संगम है। गीतावली में शबरी का प्रसंग उनकी भाव-प्रधान भक्ति और आतिथ्य-संवेदना का सुंदर उदाहरण है।

शबरी श्रीराम के आगमन से पूर्व ही संकेतों से जान लेती है कि 'प्राणप्रिय पाहुने आज ही आएंगे' और वह भावपूर्वक उनकी सेवा-सामग्री – कंद, मूल, फल, फूल आदि स्नेह से तैयार करती है। यह दृश्य केवल भक्तिभाव का नहीं, बल्कि नारी-सम्मान, गृहस्थ-जीवन की सरलता और समर्पण का प्रतीक भी है।

तुलसीदास आन्तरिक समन्वय के कवि हैं। वे जगत को राममय मानते हैं –

**'जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।'**

यह उनके अद्वैतभाव का परिचायक है, जिसमें सबमें एक ही चेतना का दर्शन है।

सामाजिक दृष्टि से वे जाति, वर्ग और पेशागत भेदभाव का विरोध करते हैं–

**'धूत कही अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ...'**

यहाँ तुलसीदास का स्वर मानवतावादी और समरसतावादी है। उनके लिए व्यक्ति की पहचान जाति या कुल से नहीं, बल्कि रामभक्ति और चरित्र से है।

समाज की आलोचना और उपेक्षा के बावजूद तुलसीदास अपनी निष्ठा से विचलित नहीं होते–

**'कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो,**
**कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।'**

यह उनकी अटल श्रद्धा और आत्मबल का परिचय देता है।

विनयपत्रिका में उन्होंने अपने समय के समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है जहाँ धर्म, नीति, मर्यादा और सदाचार का पतन हो रहा है–

**'आश्रम बरन धरम विरहित जग लोक वेद मरजाद गई है,**
**प्रजा पतित पाखण्ड पापरत अपने अपने रंग रई है।'**

यह तुलसीदास का सामाजिक विवेक और सुधारवादी दृष्टिकोण दिखाता है।

आर्थिक और नैतिक पतन का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि लोग अब केवल पेट की आग में सब कुछ बेच रहे हैं–

**'तुलसो बुझाइ एक राम धनश्याम होते,**
**आगि बड़पागि तें बड़ो है आगि पेट की।'**

यह आधुनिक भौतिकता पर तुलसीदास की तीव्र टिप्पणी है।

तुलसीदास ने अपने काव्य में जनजातीय समाज के जीवन-मूल्य, आचार-विचार और सामाजिक संवेदना को गहराई से चित्रित किया है। जनजातीय समुदाय में वृद्धजनों के प्रति सम्मान और उनकी राय का महत्व प्रमुख सामाजिक परंपरा थी। निषादराज गुह जब भरत से युद्ध की तैयारी करता है, तब एक वृद्ध उसे संयम और सद्भाव का परामर्श देता है–

**'बूढ़ एक कह सगुन बिचारी, भरतहि मिलिअ न होइहि रारी।'**

यह उद्धरण बताता है कि जनजातीय समाज में विवेकपूर्ण परामर्श और वरिष्ठ अनुभव को अत्यधिक सम्मान दिया जाता था।

साथ ही, यह भी स्पष्ट है कि ये समाज शकुन-अपशकुन जैसी पारंपरिक मान्यताओं में विश्वास रखते थे। स्वयं निषादराज गुह भी सगुन विचारने में निपुण थे–

**'लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु।'**

यह उनकी सांस्कृतिक चेतना और धार्मिक आस्था का परिचायक है।

परंतु तुलसीदास ने अंधविश्वासों पर व्यंग्य भी किया है। वे बताते हैं कि समाज में कर्मठ व्यक्ति को अशुभ और अज्ञानी को ज्ञानी कहा जाने लगा है–

**'लहौ आँख कब आंधरे, बाँझ पूत कब पाइ....**
**तुलसी त्रिपथ बिहाय गो, राम दुकरे दोन।'**

यह पंक्तियाँ उस समय के नैतिक पतन और तर्कहीन आचरण पर तीखा प्रहार करती हैं।

इसी प्रकार उन्होंने राजसी विलासिता और भौतिक प्रदर्शन पर भी व्यंग्य किया–

**'तुलसी त्रिलोकि को समृद्धि सौंज सम्पदा, सकेलि चाकि राखी रासि जांगर उहान भों।'**

यहाँ तुलसीदास ने समाज में बढ़ती भोग-संस्कृति, दान का प्रदर्शन और आडंबरपूर्ण जीवन की आलोचना की है।

तुलसीदास का दृष्टिकोण संतुलित और यथार्थवादी है। वे एक ओर जहाँ जनजातीय समाज की नैतिकता, बुद्धिमत्ता और आस्था का सम्मान करते हैं, वहीं दूसरी ओर अंधविश्वास, आडंबर और अन्याय पर निर्भीक सामाजिक आलोचना भी प्रस्तुत करते हैं।

तुलसीदास नारी को केवल कोमलता या गृहस्थी तक सीमित रूप में नहीं देखते, बल्कि शक्ति, श्रद्धा और प्रेरणा के रूप में उसकी महत्ता स्वीकार करते हैं। वे नारी के प्रति अत्यंत संवेदनशील, करुणामय और आदरपूर्ण दृष्टिकोण रखते हैं। उन्होंने मध्यकालीन समाज में नारी की पराधीनता और दुःखद स्थिति को गहराई से अनुभव किया–

**'कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं, पराधीन परनेहु सुख नाहीं।'**

यह पंक्ति उस युग की नारी-दशा पर तुलसीदास की वेदना का सजीव प्रमाण है।

उनके लिए नारी मात्र भोग या पराधीनता की प्रतीक नहीं, बल्कि ममत्व, स्नेह और श्रद्धा की मूर्ति है।

उनके ग्रंथ रामचरितमानस का आरंभ ही वाणीरूपा मातृशक्ति और विवेकरूपी विनायक की वंदना से होता है। उसके बाद वे पार्वतीजी की वंदना करते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि तुलसीदास ने आदि-शक्ति को ब्रह्म का अनिवार्य अंग माना। यहाँ तक कि अपने इष्ट श्रीराम की स्तुति से पहले उन्होंने सीताजी को प्रणाम करके नारी को श्रेष्ठता और पवित्रता के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया।

उनके साहित्य में नारी को उन्होंने श्रद्धास्पद, वंदनीया और पूज्या के रूप में चित्रित किया है। यह सम्मान केवल सीता, पार्वती या अन्य देवियों तक सीमित नहीं, बल्कि सामान्य और जनजातीय नारी तक विस्तृत है। तुलसीदास के लिए जनजातीय समाज की स्त्रियाँ भी प्रेम, सहयोग और सद्भाव से परिपूर्ण गृहस्थ जीवन जीने वाली थीं। वे सामाजिक और सार्वजनिक कार्यों में पुरुषों के समान सहभागी दिखाई देती हैं।

इसका सुंदर उदाहरण तब मिलता है जब श्रीराम के दर्शन पर किरात और किरातिनियाँ समान रूप से आनंद से भर उठती हैं—

**'मुदित किरात-किरातिनि, रघुवर रूप निहारि।'**

तुलसीदास ने अपने काव्य में जनजातीय समाज की नारी—किरातिनियों को अत्यंत श्रद्धा, भक्ति और संवेदना के साथ चित्रित किया है। श्रीराम के दर्शन मात्र से इन किरात और किरातिनियों के स्वभाव में आध्यात्मिक परिवर्तन आ जाता है, वे सब साधु-स्वभावी बन जाती हैं:

**'भए सब साधु किरात किरातिनि, राम दरस मिटि गई कलुषाई।'**

राम के दर्शन से उनका अंतःकरण निर्मल और पवित्र हो जाता है। इन स्त्रियों के हृदय में भक्ति का संचार इस सीमा तक होता है कि जब वे श्रीराम के सौम्य रूप को देखती हैं, तो आनंद और भाव-विभोरता से उनके शरीर में पुलक उत्पन्न हो जाती है और नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है:

**'बचन परस्पर कहति किरातिनि, पुलक गात जल नयन बहे री।**
**तुलसी प्रभुहि बिलोकति एकटक, लोचन जनु बिनु पलक लहे री।'**

इस प्रसंग में तुलसीदास ने जनजातीय नारी को केवल करुण या हाशिए पर पड़ी प्रजा के रूप में नहीं, बल्कि साधक और भक्त के समान आध्यात्मिक ऊँचाई पर प्रतिष्ठित किया है।

सीता के अपहरण के बाद भी यही नारी वर्ग श्रीराम के दुःख में सहभागी होता है—वे कोलिनियाँ, कोल और किरात सब मिलकर करुण विलाप करती हैं:

**'कोलिनी-कोल-किरात जहाँ-तहाँ बिलखात।'**

इस प्रकार तुलसीदास ने दिखाया है कि भक्ति केवल वर्ण या जाति की सीमा में बँधी नहीं, बल्कि हृदय की शुद्धता और संवेदना से उत्पन्न होती है।

अंततः, तुलसीदास के अनुसार ये किरातिनियाँ तपस्विनियों के समान भक्ति के मार्ग पर अग्रसर होकर परम गति को प्राप्त करती हैं:

**'तापस किरातिनि कोल मृदु मूरति मनोहर मन धरी।**
**सिर नाइ, आयसु पाइ बवने, परम निधि पाले परी।।'**

तुलसीदास ने जनजातीय नारी को भक्ति, संवेदना और साधुता की साकार प्रतिमा के रूप में चित्रित किया—जो समाज की समानता और आध्यात्मिक एकता की उनकी भावना को सुंदर रूप से प्रकट करता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी भक्ति पद्धति को भारतीय संस्कृति का सार माना और उसके माध्यम से परम तत्व का विवेचन किया। उन्होंने रामराज्य को न केवल आदर्श शासन का प्रतीक माना, बल्कि उसे दैवी सृष्टि और विश्व-रूप ब्रह्म का साकार रूप बताया। उनके शब्दों में—

**'विश्व रूप रघुवंस मनि, करहु बचन विश्वास।**
**लोक कल्पना वेद कर, अंग अंग प्रति जासु।।'**

इस वर्णन में तुलसीदास ने श्रीराम को समस्त सृष्टि का अंतःकरण और आधार बताया है—पाताल उनके चरण हैं, आकाश उनका मस्तक है, दिशाएँ उनके कान हैं, वायु उनका श्वास है, और जल, अग्नि, पृथ्वी आदि उनके शरीर के अंग हैं। यह दृष्टि वेदों के विराट पुरुष की अवधारणा से पूर्णतः मेल खाती है।

तुलसीदास ने भक्ति को केवल साधना नहीं, बल्कि संस्कृति का स्वरूप माना। वे कहते हैं कि सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं; दोनों एक ही परमात्मा के दो रूप हैं—

**'अगुनहिं सगुनहिं नहिं कुछ भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।।**
**जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल विलग नहि जैसे।।'**

उनकी दृष्टि में राम सगुण में निर्गुण का प्रतिबिंब हैं, जैसे जल और बर्फ में कोई अंतर नहीं। तुलसीदास ने यह भी कहा कि हृदय में निर्गुण, नेत्रों में सगुण, और वाणी में रामनाम का स्मरण ही पूर्ण भक्ति है—

**'हिय निरगुन नयननि सगुन रसना राम सुनाम।**
**मनहु पुरट संपुट धरे, तुलसी ललित ललाम।।'**

कबीर जैसे संत जहाँ सगुण और निर्गुण के बीच स्पष्ट भेद करते हैं, तुलसीदास वहाँ समन्वय का मार्ग अपनाते हैं। उनके लिए राम केवल अवतारी पुरुष नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व-चेतना के प्रतीक हैं।

समाज और संस्कृति के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करते हुए तुलसीदास ने यह

प्रतिपादित किया कि भक्ति केवल कर्म या ज्ञान से ऊपर की स्थिति है–

**'कर्मठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञान बिहीन।**
**तुलसी त्रिपथ बिहाय गो, राम दुवारे दीन।।'**

अर्थात जिसने कर्म, ज्ञान और योग–तीनों मार्गों को छोड़कर केवल राम भक्ति का आश्रय लिया है, वही सच्चा साधक है।

कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने भक्ति को भारतीय संस्कृति का प्राण, राम को परम तत्व का साकार रूप, और रामराज्य को आदर्श मानव सभ्यता का प्रतिरूप माना। वे कवि, दार्शनिक, भक्त और समाज–सुधारक सभी रूपों में अद्वितीय हैं। उनकी वाणी में जैसे उन्होंने स्वयं कहा है–

**'थोरे मँह जानिहहिं सयानें।'**

अर्थात्, ज्ञानीजन ही उनके गूढ़ दर्शन का यथार्थ अर्थ समझ सकते हैं।

निष्कर्षत: कहा जाए तो गोस्वामी तुलसीदास मध्यकालीन भारतीय समाज के समन्वय प्रतीक हैं। उन्होंने भक्ति, दर्शन, समाज और संस्कृति का सुंदर संगम प्रस्तुत किया। तुलसी ने नारी, वनवासी और जनजातीय समाज को समान आदर दिया तथा उन्हें भक्ति, प्रेम और सहयोग का प्रतीक माना। वे सगुण–निर्गुण भेद को न मानकर ईश्वर को सर्वव्यापक रूप में स्वीकार करते हैं। उनका 'रामराज्य' आदर्श समाज और संस्कृति की पराकाष्ठा है। वास्तव में तुलसीदास का काव्य मानवता, नारी–सम्मान और भारतीय जीवन–मूल्यों का अमर घोष है।